मधुमिलन सेतु

कविता संग्रह

ओदोलेन स्मेकल

स म का ली न   प्र का श न

दो शब्द

हिन्दी कविता जगत में एक विदेशी कवि ओदोलेन स्मेकल का शत शत स्वागत 1982 में डा. हरिवंशराय बच्चन और स्वर्गीय श्री भवानी प्रसाद मिश्र ने किया था और उनका प्रथम काव्य संग्रह 'तेरे दान किये गीत' का उदघाटन भूतपूर्व प्रधान मंत्री स्वर्गीय श्रीमती इंदिरा गांधी ने भावपूर्ण शब्दों में अपने ग्रह स्थान पर किया था। स्मेकल की काव्य यात्रा बहुत सफल रही है—इस तथ्य की पुष्टि उनके वर्तमान नोवें काव्य संग्रह 'मधुमिलन सेतु' से होती है। हिन्दी जगत की ओर से मैं उन्हें बधाई देता हू और आशा करता हूं कि श्री ओदोलेन स्मेकल की काव्य यात्रा अन्य कई विदेशी हिन्दी कवियों के लिये प्रेरणा का स्रोत सिद्ध होगी।

कृष्ण खुल्लर

1988

आवरण:—हना उर्बानोवा

I S B N : 81—7083—087—7 (सजिल्द) : 50 रुपये

I S B N : 81—7083—088—5 (पेपरबैक) : 30 रुपये

प्रकाशक : समकालीन प्रकाशन

2762 राजगुरु मार्ग,

नई दिल्ली—110055 (भारत)

मुद्रक : राजीव प्रेस,

दिल्ली-110006

विश्व हिन्दी कवियों के नाम

स्मेकल की काव्य यात्रा: नौवां रत्न और दसवां द्वार

शब्द की पहचान से शब्द शक्ति तक की पहचान करते हुए किसी को भी एक लम्बी यात्रा तय करनी पडती है। शब्द की तीसरी आँख की पहचान के दौर में खतरे भी हैं और आह्लाद भी। खतरों और आह्लाद का दायरा तब बड़ा होता है जब किसी भाषा से रिश्ता जरा दूर का हो। यही चैक भाषी हिन्दी कवि ओदोलेन स्मेकल के सम्बन्ध मे भी कहा जा सकता है। भाषा वैज्ञानिक होने की प्रक्रिया से गुजरते हुए कविता की सर्जनात्मक भूमि पर कदम रखते वक्त स्मेकल ने अवश्य ही ऐसे आह्लाद का अनुभव किया होगा जो बहुत कम लोगों को नसीब हुआ है। फादर कामिक बुल्के, लोठार लुत्से आदि कुछ नाम जहन मे आते हैं, जिन्होने हिन्दी चैक मे काम किया है। प्रो० लेस्नी ने रवीन्द्र की कविताओं का अनुवाद किया लेकिन हिन्दी मे काव्य सृजन करने वाले ओदोलेन स्मेकल सम्भवत: प्रथम विदेशी कवि है।

भारत तथा हिन्दी के प्रति उनके अनुराग तथा उनके वृहद् काव्य ससार को देखकर तो अब वे विदेशी लगते ही नहीं: किसी भी जीवन्त और प्राणवान् भारतीय हिन्दी कवि की तरह से तो उनके एक के बाद एक कविता संकलन सामने आकर हमे चकित भी करते हैं और रोमांचित भी। ओदोलेन स्मेकल की काव्य-यात्रा तेरे दान किये गीत' से शुरू होकर 'मधु मिलन सेतु' तक पहुंची है। उनके इस नौवें कविता-संकलन के प्रकाशन के अवसर पर कहा जा सकता है कि उनकी कविता की राजसभा मे अब नवरत्न सुशोभित हो रहे है और हमारे लिये यह सुअवसर भी है कि हम इस बहाने स्मेकल की अब तक की कविता यात्रा की पड़ताल करें।

ओदोलेन स्मेकल की कविता—यात्रा की पड़ताल के लिए अब हम समकालीन हिन्दी कविता की पड़ताल करने वाले औजारों का इस्तेमाल करने लगेंगे तो निश्चित ही हम गलत फैसलो पर पहुचेंगे, क्योंकि स्मेकल की कविता के मूलाधार समकालीन हिन्दी कविता के मूलाधारो से एक दम अलग है। समकालीन हिन्दी कविता जहां सशय, अवसाद, पीडा और कही-कहीं कुण्ठा से *आक्रान्त है या* फिर सामाजिक व्यवस्था के प्रति क्षोभ पैदा करते हुए बदलाव की मांग करती है, वही स्मेकल की रचना सशय, अनुराग, आशा और विश्वासो से भरा हुआ है।

एक वे ओर जहां भारतीय समाज के जर्जर स्वरूप को बिम्बित करने से नही चूकते, वे वहीं प्यार और विश्वास की धरोहर को भी नजर अन्दाज नही करते। बल्कि देखा जाए तो प्यार और विश्वास ही उनकी कविता का मूल स्वर है। इसी तरह से वे बहुत ही पहचाने हुए प्रतोको और जहन मे साफ-साफ उभर सकने वाले बिम्बों का ही इस्तेमाल करके अपनी बात कह जाते है।

उदाहरण के लिए स्वाति बूंद से उनका यह काव्यांश देखा जा सकता है—बसन्त ने मेरी एक ना मानी/बरबस ही फूट पड़ा वही/दिशा-दिशा में बन कर दानी।

स्मेकल के कवि की आंख वर्तमान को अतीत से तोड़ कर नही देखती। कहीं वह गंगा के इतिहास से जुड़ती है तो कही महाभारत या रामायण काल के चरित्रों के प्रति अपना नमन व्यक्त करते हुए आज के किन्ही संदर्भों मे उनकी जरूरत महसूस करती है। उनकी भारत तथा कविता के प्रति बनी समझ मे घूम-घूम कर देखने और अर्जित अनुभवो की भूमिका को भी हम नजर अन्दाज नही कर सकते।

कविता के मूल्यांकन के मान दण्डों की परवाह नही करती स्मेकल की कविताएं बल्कि कभी वे 'अविराम के माध्यम से शहीदों के बलिदान के प्रति हमे सचेत करती हैं तो कभी 'कमल को लेकर चल' के माध्यम से शान्ति जैसे स्थायी मूल्यो के प्रति आस्था भाव उकेरने का काम करती हैं।

'मधुमिलन सेतु' तक आते आते स्मेकल अब हमें विदेशी नहीं लगते। पहले-पहले की यह उत्सुकता भी अब नही रही कि कोई विदेशी कवि हिन्दी में भारतीय परिवेश को अपनी कविताओं मे किस रूप खड़ा करता है। उनका नजरिया साफ है और गन्तव्य निश्चित। उसी ओर वे निरंतर चल रहे हैं, चल रहे हैं। उनकी यह गतिशीलता हमें बार-2 सोचने को बाधित करती है और हम बार-2 उनकी काव्य-यात्रा के पुड़ावों पर बातचीत करते हैं, प्रश्नचिन्ह लगाते हैं और कामना करते हैं कि भविष्य मे उनकी और भी बेहतर कविताएं पढ़ने के लिए मिलें। नवरत्नो की प्राप्ति तो हुई, दसवां द्वार खुलना शेष हैं।

प्रताप सहगल

सूची

सूची

नई मधुशाला

माँगता हूं नई मधुशाला
अपने लिए क्यों—हिन्दी के लिए
उसकी देहली पर खड़ी
रूपवती मधुबाला
आते-जाते पथिकों के चित्त जो मोह ले
अपनी अदम्य चारुता से
और सभी के जो भूले-भटके
जिनको हिन्दी में बोलने की हिचक
सभी के मन को वह हर ले

ग्राम-ग्राम
नगर-नगर में
चाहिए इस देश में नई मधुशाला
प्रतिगृह में नई स्वामिनी
मधुर सांस
होंठ से होंठ तक
सहज गामिनी
मौन होती है शाला
जिसमें न मनभावन चषक
न लुभावनी बाला

जिसके घर ठुकराई सीता-स्वगृह अवाक
चाहे सात सागरों का छापा-छापा छान मारा
चाहे महापर्वत जीता
बिना हिन्दी की मधुशाला के
वह भारत बंधु सुस्ताए, प्यास बुझाएं कहां
—आजीवन रहेगा वह मात्र चक्रवाक!

सुर-ताल की जीर्ण-शीर्ण झोली

वह जीर्ण-शीर्ण सुर-ताल की
सुतलीविहीन झोली
छुटपन में पहली बार कब खोली
किस आयु में किस दिन को
अब कहाँ स्मृति, कहाँ याद

था उस झोली में टूटा-फूटा गुटका
गीता का चेक भाषा में अनुवाद
—यहीं, यहीं से भारत देश
उसकी भाषाओं, संस्कृति के प्रति
मेरे प्रेम का श्रीगणेश

इसी देश की बोली सुन्दरी
हुई अंतर्निविष्ट हृदय में गहनतम
और अब तक संग-संग रहती है
हर पल, हर दिन, हर रात
हर दुपहरिया
रहे वह वहां मन करता है
काश रहती आमरण !

सुरताल की वह जादूभरी सुरताल की झोली
इतनी विशेष सौरभपूर्ण
रही पड़ी कहां कौन जाने स्वयम् राम जाने
वैसे तो इसकी अपेक्षा भी नहीं
जहां-जहां जाऊं
जहां-जहां दृष्टि डालूं
इस देश की
जुहू, मालती, महुआ,
रातरानी की सुगंध से
मेरी सारी राहें,
मेरी सभी राहें
परिपूर्ण •

प्रस्थान करने से पूर्व

गले पर जुहू, मालती माला पहने
सहस्र बार तुझे नमस्कार
सौ सहस्रों स्नेह-संदेश
भो सूर्यमुखी देवगिरि देश
तू हर पल मेरा
हर पल, हर सपने का समानस सरोवर—
तुझे सौ सहस्रों बार
लाड-दुलार

तू ही थी मेरी नियति इन प्राणों में
समस्त कामनाओं की तड़पन
सारे कर्मों का दर्पण
जिसमें अनेक कंगूरे रहे अब तक
लाख यत्न करने पर भी
अधूरे

तेरे संग यह जगलीला
थी बार-बार बाल-क्रीड़ा
बार-बार थी वह प्रेम-पीड़ा
पूरे व्योम की थी तो वह सलोनी छटा।
हिन्द महासागर की
लून लदी समीरों में
बारंबार लुकती-छिपती लता
जिस पर एक बार जब दीठ पड़ी
यह इहलोक-लीला बनी
मेरे लिए जादू-भरी
दिन-दिन नई छवि उसमें झड़ी
गंगा तीर थी नई लली
मेरे सामने खड़ी •

धूप वासित गृह

जो टूटे-फूटे पेड़ों की छाया लिए
चाहता है जीवन जीना
वह उसे जिए—
पर मुझे एक नहीं, बारहों मास
उन्मुक्त सांस लेने के लिए
अपेक्षित है धूप वासित गृह
वासंती वास
ढका पारदर्शी खपरैलों से
खिड़कियां व्योम को भागती हुई
असीम-अपार
कोने-कोने वायवी द्वार
हर भले पथिक के लिए
जो दूरी से थका हुआ आता है
वायवी द्वार
खुला हुआ प्रेमवश
मेरे हृदय की भांति
पारावार ! •

कुछ शब्द

जानता हूं कुछ शब्द
जो गाढ़े समय काम आते
तभी वे सांत्वना देते हुए
मृदु-मृदु गोद में
अपनी ओर बुलाते

जब से उनको जानता
सुगम ही सुगम मेरी राहें
सुकर ही सुकर सारे काम

उनके संग-संग
न धूप या ठंड की चिन्ता
न कल के दिन का भय
उन शब्दों को लिए
बस तक सड़क पर मेरी प्रतीक्षा करती
सहज ही कोई भी पकडता हूं ट्राम
कंबल-सी मेरे लिए होती है धरती

जब से उन शब्दों को जानता
सारी मेरी राहों से छूटता है
चाहे कंकर, चाहे कांटा
उनका जब करता हूं जाप
कठोरतम हृदय भी खुलते हैं आप ●

झेल वह सतत खेल

झेल, संकट पर संकट झेल
झोंके पर झोंका—
यही प्राणों का दूसरा नाम
सतत खेल!
हर झोंके की अपनी सुरलहरी
उठ जाती पुनः, पौनःपुनः
जैसे चट्टान पर चट्टान
नई चोटी सुनहरी
बियाबान के पीछे
नई झांकी सुनहरी
ठीक है, रूठूं क्यों
सत्य जब स्वयम् राम! •

दिन की जोत

गा, कवि
जन-जन के स्वांत में सौरभ ला
दे सांत्वना
घोर जिनकी रातनिद्रा

कवि की प्रगीति प्रेयसी
काश पीड़ितों के लिए होती
औषध अमृत-सी
और इससे लाख गुनी सुखदा

कवि गा
जगत को हर दुपहरी चाहिए
तेरे काव्य-गीतों की सुरलहरी
हर सांवली संध्या
जगत को चाहिए आभास
नए जोत भरे दिन की आस
सूर्यकिरणों में शिला-सी सुनहरी

ओ कवि गा
हमारे दिनों की जोत और जगा !

मधुर शब्द

उनकी वागपटुता मीठी—
है तो किंतु मात्र अक्षर-लीला
मधु मास-सी कभी लुभावन
कभी कदंबों की वीथी

कलेजे से उनको लगा ले
हेल-मेल उनसे बढ़ा ले
पर कभी न अपना ले

आकर्षक होते हुए भी
हैं तो मात्र अक्षर-लीला
वक्ता ने जिन पर शोभनीय सूत्र
अपना चमत्कारी रूप सटा लिया

छोड़ ठाट-बाठ उनकी, भैया
ढूंढ शब्दों के भीतर सार
जो बाहरी वह असार
मर्म की ओर
मन के कर कमल पसार!

अपना जी सत्व से जोड़
ओजस्वी से ओजस्वी महाराग
मांगता चमक-दमक का परित्याग

बिता दे जीवन निर्मलता के सहारे—
श्वेत से श्वेत वर्णों से कर आलोकित मन
जैसे व्योम को तारे



फलित कर बियाबान

ललित कर
कुछ नाम
अधिक देर तक नहीं
तो क्षण मात्र हेतु
उन्हें ललित कर
जैसे दिनकर निबाहता
अपना पुण्य कर्म
प्रति नव जन्मित भोर
ललित-ललित कर उनकी ध्वनियाँ
उनका मर्म

हरित कर
कुछ स्थान
जो प्रखर ताप से झुलसे
मानवी द्वेष से संतप्त-म्लान
अधिक देर तक नहीं
तो क्षण मात्र हेतु
उन्हें हरित कर
जिससे दुःखी मनुप विलाप न करे
तपे अंगारों से बेकार न जले
हरित-हरित कर उनकी शुष्कता
जिससे बूँद-बूद वृष्टि लिए
तड़प-तड़पकर बंधु न तरसे

रहे पंचतंत्र अपना गुरुमंत्र

कहा यमदूत ने—
सभी को मरना है।
चाहा न चाहा—
तरसों, परसों, कल या आज
चाहे वह चरवाहा
या हो महाराज

चाहिए किंतु—
यदि कोई मरे
बिना डरे वह मरे
—आजीवन जो निडर
युग-युगांतर अमर!

यों बिन आघात
कब पिघल जाता मानवी दंभ?
अकस्मात्
स्वाति जल की कब आती बरसात?

काश बदल सकते
दिनकर के स्नेह दीप
मानव हृदयांतर के पत्थर द्वीप !

काश यों ही आती
मानव में अनायास
प्रति भोर के संग
नई आस
प्रति भोर के संग
भड़ास ! ●

नील कमल

कैसी थी
अब तक की मेरी इहलोक लीला ?
अविश्वास्य सुन्दर थी
घड़ी-घड़ी जलपातों-सी नई-नई तरंग
नए-नए प्रेम
हर नए प्रेम के संग
वही पुरानी पीड़ा—
थी अब तक अविश्वास्य सुन्दर
मेरी इहलोक लीला

थी रातें कभी निद्राहीन
घड़ी-घड़ी जिनकी
अंधेर युग सम बीती

पर थी तो तू ही
वह नील कमल
कंटीली राहों पर जो देती थी
मेरे गंतव्य को अविराम स्मिति
—सुदूर जाते-जाते थक जाने पर
थी तो तू जो देती अविराम
बूंद-बूंद संजीवन सम प्रीति •

मैं उनकी सुनता नहीं

वाह् जल ही जाएं
जिनको मेरे अटूट मानव प्रेम से
डाह
—सभी के संग चाहता हूँ जीना
मेल से !

नहीं सुनता उनकी जली-कटी
हैं पावन हिमशिखरों से
मेरे नयन भूषित
जब कि वे—
जलती आग में कूद कर
जलने की पीड़ा से मन में दूषित

हाय !
जीते जी जलन से
जी उनका जलता-भुनता—
परन्तु मैं तो उनकी
कहां सुनता ! ●

हम निरे आप्रवासी

कहीं भी सुस्थिर वास
हो यहाँ प्रिय-से प्रिय
मात्र आभास

हम निरे चलाचल वासी
हमारी अस्मिता-भंगिमाएँ
नदी की जल धारा-सी
यह सच मान—

सब कहीं हम
ज्ञात-अज्ञात
प्रिय स्थलों कि तृणस्थलों के
आप्रवासी
और डेरा किसी का भी
किले सा दृढ़ भी
चलायमान— •

सुधारस की स्वांति

प्रियवर के संग बिताई
घड़ियाँ अविकल
हमारे अस्त-व्यस्त प्राणों मे
हरित रहतीं प्रात-दुपहर-रात
रहतीं जेठ की लू में भी
हिम शीतल

उन घड़ियों का अरुणिम हास
जीवन के लिए पुनः श्वास
उनकी घुईली शांति
उमसभरी व्यस्तता के लिए
कदंबों की पांति

उन घड़ियों की कृपा से
मस्तक पर उकरी दुख-पीड़ा की छाप
दूर हो जाती अपने आप
रह जाती मात्र सुख-लीला उस पर
और होंठों पर सुधारस की स्वांति •

मौन आलाप

वे तीन शब्द—
तेरी-मेरी प्रीत
हैं स्थिरता
त्रिकाल जो
भूत, वर्तमान और भावी में
निरंतर फिरता

हैं कवित्व, गीत
है ताप-शीत
वृन्दावन हैं गोपी-ग्वाल
एक रस सूत्र में जिनको
आदि से मिलाता

स्वतः इन्द्रजाल
तेरी-मेरी प्रीत
वे तीन शब्द अवाक
—अंधेरे-उजाले झंकृत करता
जिनको चोरी-छिपे
आसक्त दूरियों का मूकालाप •

जीवन-जोत एक ही

जामुन कटे निर्जन पथ
न रहे कभी मरे जीवन संगी
मेरे रथ—
एकमात्र तीव्रगामी नावों से लदी घाट
शिराम्रों में बहती रही
गंतव्य की ओर
दूर-दूर देहली पार

क्या जलमग्न, धूलिमय
क्या तप्त-शीतल
अनेकों के अनेक
प्राणों के पृथ्वी तल

लाखों के लाख
दिनकर की किरणें—
पर जीवन-जोत एक ही
उसे गहनतम अंतरतम में
बनाए रख उज्ज्वल
—मरते हुए भी •

वह घर

मेरे घर के पते की पूछ-ताछ
सुहृद, न कर—
वही खड़ा है वह घर!

अंतहीन महासगर के कुल
बांस की झोंपड़ियां जहां
गाछ, तम्बुल
वहां—
जामुन तले खड़ा है वह घर

पर बिना द्वार क्या घर ?
भू पर चौकी
आस-पास टोकड़ियाँ

यह रही मेरी घर वाली राधा
और बेटी सुगीता
दोनों भोली-भली
साकार श्रद्धा
एक दूसरी से अधिक विनीता—
वेश उनका क्या वेश
कपड़े-लत्ते
डरावे का भेष।

यह फिर रही मेरी देह—
क्या देह, ओ परमात्मन!
खूंटी पर टंगी लाश
यमदूत उसकी कब से करते तलाश!

बस, यही हम सभी जन
—एक दूसरे से अधिक दुःखी
मन ही मन
निबिड़ वन
मन ही मन ●

प्रेम प्रेम से खिलता

जीवन की सारी कलाओं में
चाहे शिल्पकला
चाहे सुश्राव्य काव्य में—
युगों से
युगों तक सुंदरतम वह गीत
जिसमें मानुषी प्रेम—
प्रिय-प्रिया नर-नारी की प्रीत

प्रेम-प्रेम से जलता
प्राणों का वह दीपस्तम्भ उज्ज्वल
आलोकित जो करता
प्रेम-जीवन-नाव का वह मस्तूल
सागर के सकल कूल
समीप के उपद्वीप
महाद्वीप सुदूर

—

प्रेम-प्रेम से खिलता
वाक जैसे अवाक से
कली-कली से जैसे फूल

प्रेम-प्रेम से जब मिलता
दिशा-दिशा में
गगन भूगर्भ में
कुछ एकाएक हिलता
सब कहीं मिट जाती
हमारी जड़, पथरीली
अश्मीभूत स्थिरता

प्रेम-प्रेम से खिलता
कभी न भिड़ता! ●

गा वह गीत !

गा, गा वह गीत
ग्राम की धूलि में
सुखी जन द्वारा प्रणीत—
गा वह गीत जिसमें न मन दुखिया
न प्रीतम-प्रीतमा भयभीत
मेरे सुहृद

ऐसा गीत कहाँ
जिसमें केवल सुखमय प्रीत—
प्राणों में मिलकर ही
जोत-छाया, आतप-शीत

मिलकर ही मृदु हास
घोर निराशा में
भीतर ही भीतर प्रास
विरह के बाद
मधुमास

तो फिर गा, गा कभी करुणा
ताज जिस वेला लुटाने लगता
अपनी विपण्ण श्री
और दुःखी तरंगों को स्वतः यमुना

गा फिर विस्मृत श्लोक
भुलाए जो नहीं भूलते
जिनसे अनेकों धूल-धूसरित स्मरण
आप ही खुलते—
आप ही
घड़ियालों की ध्वनि
चौपालों में
ऋषियों की वाणी
सुधारस का अतीत लोक

गा, गीत भी गा
दूब-दूब की सुगंध स्थली जिनमें
भू पूरी की पूरी सोहाग भरी
खेतों में खिलती सरसों का पीत जिनमें
नीम की डालियों में सावन के झूले
भुलाए जो कभी न भूले

गा, ओ गा वे गीत
समीरण जिनमें और लोल-लोल थपकियों-सी
यौवन की सदा बहार प्रीत •

रातरानी के संग

गिन-गिन कर न जाने
कब तक गिनूँ
और कितने गिनूं फूलों के रंग ?
कौन-सी है इन प्राणों में
मेरी रम्य-से-रम्य पुष्प सहेली
—गेंदा, सूरजमुखी, जुही
केवरा, कुसुम, कि चमेली ?
उसी का साथ दूँ
जो निबिड़ वन में

फूलती नित अकेली ?
या आजीवन चलूं
केवल रातरानी के संग ?

इन विकल प्राणों में
कहाँ-कहाँ न घूमा
क्या-क्या न चूमा
सब बेकार-सा था
अशांत सागर के मानुषी जगत में
उदास मन की व्यथा
कह जाती कभी आप ही अपनी कथा

व्योम की नीलिमा
कभी स्वतः मानुषी मानस में
बन जाती सरस्वती प्रतिमा—
बेसुरी बांसुरी
केवड़े के कर कमलों में
यदा-कदा बन जाती सौरभयुक्त पखुरी

गिन-गिनकर न जाने
कितने फूलों को गिना
देखे पुष्पों के कितने रंग—
हाँ—अब मुझे पता है
चलूंगा, प्राणों में केवल
अपनी रातरानी के संग ! •

मधुमिलन काल

मुझे कभी यह लगता
कि यहाँ कुछ प्रियस्थलियाँ है
जिनके सामीप्य में
जगत भर
एक हो बिंदु हो जाता
मधुमिलन की गोद है
अभिराम

कभी ओ प्राणप्रिए मुझे प्रतीत होता
कि मिले थे हम यहीं अतीत में
और तभी से मिलते आ रहे
बराबर समय-कुसमय अविराम—
कभी किसी खेत में
हरे-भरे धान में
कभी किसी ग्राम में
जहाँ गूंजते
सहस्त्रों तानों में
सावन के गान—
कभी किसी तीर्थ-स्थलों में
जहाँ लोग जपजप करते
श्रीहरि का नाम श्रीहरि-श्रीहरि
और आकाश लूटता भू पर
वर्षा की बूंदे जादू भरी •

अभी तक वे प्यारी घड़ियाँ
बीत गई नहीं
अभी तो स्नेह से भर देखो
हम दोनों का जीवन काल दिन पर दिन

आँखों से आँखें मिल जातीं
शिला सी मन मानस में
प्रेमपूर्वक टिक जातीं

जी, पता है मुझे
अभी तो ये घड़ियाँ
कल, परसों, तरसों के लिए
अनेकों दर्शनों के लिए
अनगिन शेष रह जातीं

अभी तो हम भाग्यवान
एक दूसरे के लिए
अर्पित करते अपने प्राण
री प्राणप्रिये, ऐसी घड़ी
चिंतामणि-सी अमृत मान
अब तो मधुमिलन में जीना
हमें आता
एक दूसरे पर समय पल
न्योछावर करना आता—
अभी तो वह मधुमिलन काल
कलेजे में अशेष ही समा जाता

अनमोल दान

हमारे चारों ओर
होतीं अनेक वस्तुएँ
विद्यमान
जो अविश्वास्य सुंदर
प्राणों के लिए
अनमोल दान

इसलिए अपने सुहृद के घर
सतत मुस्काते हुए
अरुण वर्णी भोर-सा चल
देख तो ले
कि क्या उसके मस्तक
मुख उसका म्लान
क्या उसे नहीं चाहिए
प्रेम दान
सदा कल्पतरु भोर-सा
और प्रेमातिरेक लिए चल
अपने सुहृद के घर

जहाँ जाना
वहाँ मन ही मन थोड़ा सा गाना—
नहीं आता गान
तो तुछ सी कोई वस्तु लाना
और कुछ नहीं
तो पेड़ों की हरियाली
ऐसी जो कभी न भूलने वाली
या कोई पौध
ऐसी जो इतनी फूले
कि प्राणोंप्राण भुलाए न भूले
ललित और साथ-साथ फलित
सदा ही सदा हरित

मानवी जगत को
कुछ अनमोल देना चाहते हो
सतत दे ऐसा कौतुकी दान
क्या फूल क्या मोती
जो असुहृद के क्रूरतम मन में भी
जगा दे
प्रेम का उजाला महान
और अधिक नहीं तो प्रेम की लौ छोटी

मानव को चाहिए कि प्राणी-प्राणी को
अपना भाई माने
कि मानव-मानव को मानव माने
जैसे जलधारा की तरणीयों में

है अंतर्निविष्ट नृत्य-ताल
वैसे मानव मन में भी
सृजनशक्ति विशाल
वह तो कभी आशु-रीत
क्या कविता, क्या मूर्तिका
कर देती प्राणीत

कभी तो निरी श्यामला रात्रि
अभागे बंधु के लिए
बन जाती मंगल की अप्रत्याशित दात्री
कभी निरी धूप भरी दुपहरिया
ग्रामीण बाला को
बनाती अनुपम सुंदरिया
कभी सर्वमंगल का उदार दाता
मुरलीधर की लय में
अपना अदृश्य निकेतन पाता
कभी नील पवन का अमृतबान
लगाता है मन में
संसार का सुन्दर-से-सुन्दर उद्यान

यह भी होता कभी
कि यहाँ की प्रियस्थली में नहीं
तो किसी दूसरी में
स्वयम् जीवन-विधिदाता
अपनी अतुल निधि
हम सबके मन में फैलाता •

वाणी की राहबीती

मैं यह मानता
कि हमारे अधर से जो कभी कहते न बनता
अनसोचे-अनविचारे जो छूट जाता
आप-ही-आप
वह स्वतः सुधावृष्टि-सा
सीधे बरसता हृदय से
झरने का सा बन
कलकलालाप

तभी अंतःकरण से फूट जाता
एकाएक वाक-इसके सकल स्वरानुस्वार
नाद-निनाद, गूंज-अनुगूंज
ध्वनियाँ
—चाहे सुश्राव्य या कर्णकटु
चाहे बोलने की इंद्रीय में
अभी अवाक

तभी तो कंठ से फूट जाता
स्वयम् वाणी—
उस द्वारा शब्दों में मूर्त
कभी गुरुमंत्र
कभी आप बुद्धिमानी

ओ मेरी वाणी
तेरे संग तुच्छ-सा कपट करने की
तेरी सुध क्षण मात्र के लिए न लेने की
कभी न ठानी—
मुझसे हो गई यदि कोई ऐसी त्रुटि
लड़खड़ा कर यदि चलती मेरी भाषा
और बन गई टूटी-फूटी
तो क्षमा-क्षमा अनेकों बार
तुझी को अर्पित हैं
मेरे जन्मों के सारे संस्कार ! •

संजीवन

अभी सावन कहाँ ढला
पत्ते कहाँ टूटे
अभी प्रति लहरी
और भी गहरी
भोर के सपने
व्योम में रचाते अभी
कौतुकी गहने —
अब भी तेरा मेरा अंतिम मिलन
नित नूतन किरण
और गगन के सारे तारे—मेरे मीत
गाते हैं इसके गीत

अभी हम कहाँ चक्षुहीन
जी में जब संजीवन नवीन—
अब भी पुनः वार
बहती शिराओं में
सोमरस धार
अब भी सूर्य की जोत
जगा देती जग में
नवीन स्रोत

भला, सावन अभी कहाँ ढला
अभी वह रोम-रोम अनुपम
सब दूसरा मात्र दृष्टि-भ्रम!

क्या हो सौभाग्य

यह भी तो सौभाग्य है
तू और तेरी डलिया
दोनों ने मेरी सुध-बुध
मेरी सब कुछ हर लिया
तू और तेरी डलिया

तू और तेरा अस्तित्व
मेरी नस-नस में रमता
मेरे भीतर-बाहर
तेरी ही ममता

यह भी तो सौभाग्य है
तू मेरे प्राणों को लली
जो अचानक परलोक की सी
इहलोक की राहों में पड़ी
तू ही आप मेरा सब कुछ
तेरी छवि मेरे मन में
तू ही आप
अणु-अणु रोम-रोम परिव्याप्त

यह भी तो सौभाग्य है
तेरे प्राणों के अनेक सलोने दान
क्या नयन
क्या कर कमलों की छवि
मेरे अलोने हृदय में सभी के सभी मूर्तिमान
तेरे प्राणों के सलोने दान

क्या ही सौभाग्य
तू अभी छोटी
स्वातिजल में जैसे उपज रहा
सीप का मोती
तू तो मेरी प्रीत-कली
मैं जहाँ-जहाँ जाऊँ
वहाँ तेरे लिए बसा लेता प्रियस्थली
तू तो मेरी प्रीत-कली •

रत्ती भर प्रेम—सभी का कुशल-क्षेम

मिथ्या चाहों से छूटा पल्ला
तभी अपने को सुखी कहला

लू से भी झुलसाए कभी न झुलसे
सच्ची प्रीत
ठीक जैसे धूप से थकाए कभी न थके
सदा हरित गीत

न रत्ती भर काम का
उसी का प्रेम
जो अनुक्षण केवल राम का
लेता नाम और तनिक भी सोचता नहीं
स्वजनों का कुशल-क्षेम

किसी के जलाए न जल जाए वह प्रेमपात्र
जिसके रहस्य को उकेरा लेखक ने सर्वत्र
धरती के वन-वन में
गगन के कण-कण में

अपने सुखी जीवन के लिए
ऐसी निवासस्थली ढूंढ
जहां नयन-नयन में मधुर स्मृति
हृदय-हृदय में प्रीति
बरताव की जो एकमात्र रीति

हम दोनों एक हो मन
एक हो अभिन्न सुध
सत-चित आनन्द सम
असीम दीठ मानस परिशुद्ध

जहां विशालकाय वृक्षों की जड़ें
वहीं—भूगर्भ में
अपने प्रेम-मन्दिर की नींव खड़ी करें

एक न भूल—
प्रेम का पारसमणि
कर्म ही—

सब शेष
सारे मीठे बोल
अमर्म—
यह मत भूल
प्रेम को चाहिए चिंतामणि
जैसे स्वर्णकार को सुवर्ण धूल

निभाने पर भी न निभे
प्रेम की राह
जिस पर कर्म नहीं
अपितु सारहीन
—निभाने पर भी न निभे
प्रेम का दर्पण
जिसमें प्रेमी-युगल का अभिसार नहीं
अपितु विरह की तड़पन
—निभाने पर भी न निभे
प्रेम का दमदिलासा
पीने पर रहे जब तन-मन पिपासा

मेरी ओर लालची आँख से
झांकना मत
मेरी लवनता कड़ी-से-कड़ी रीत से
आंकना मत
हूँ मात्र सुन्दरी
सुकोमलांगना स्वप्नवत् •

शत-शत बार प्राणप्रिये

तू ने मेरी न मानी
जब कि सब किसी ने मेरी प्रीति पहचानी
इसके साक्षी स्वत: गिरिराज सविन्ध्य—
री प्राणप्रिये, हम दोनों में
अब कौन है अनिंद्य ?

हम पिछली बार मिल न पाए, बता तो
अब पुनः तेरी गोद का लाड-दुलार
कब आए ?

कल पुनः मिलने की
मन में आई—
हाय, मिली मुझको तेरी जगह
मात्र भू पर तेरे चरणों की अरुणाई

प्राणप्रिये, जो मेरा अब दीपक म्लान
तेरे नयनों की ज्योति बिना
सारे गानों की ध्वनियों में गूंजती मन में
एक ही रही-सही तान
—वह भी विरहदान

प्रेमाग्नि से जलते हुए भी
नाम सूर्यदेव का सुमरती रह
कंटीली राह से होकर चलते हुए भी
स्तुतिगान गंतव्य का करती रह
कड़े शीत से मरते हुए भी
भीतर ही भीतर उबलती रह
री प्राणप्रिये
तू जहां-जहां चलती
तेरे संग-संग छवि है पर छाया भी
तेरे आगे-पीछे के मात्र जीवन कुसुम्भी •

सौ-सौ बार, साँवरिये

मेरे प्रीतम ऋषि, प्रेम की लौ में
रूपायित कर
मानवी ईर्ष्या-द्वेष की क्रूरतम निशि

आशु गीत खरी प्रीत—
दोनों की संजीवनी तान—
शिला-सी आस्थान
समय-असमय अविजीत

साँवलिए,
झुटपुटा होते न होते—वंशी टेर
गूंज उठे—झुग्गी, छत, खपरैल
यमुना के तीर नाच उठे
कटोर ही कुटीर

कितना ही ऊह-आह भर
कितना ही दौड़ धूप कर
प्रेम जीवन में केवल तभी मिलता
स्वांत में जब उन्मुक्त चातक खिलता

बजा, ओ बजा, मुरलीधर
चेतन में छूटे विरह ज्वर
लूटे मजा घर-ही-घर

जगत को कर चमकदार
प्रेम को आग से
सौ-सौ बार पुन: दीपक की बलि चढ़ते
सारे समूचे पुरस्कार !

इस संसार में अपना कुछ बचाए नहीं बचता
केवल प्रेमी प्रेम को प्रेम द्वारा निभाकर
यहाँ अनन्त से अनन्त तक रचता
सच्चा मानवानुराग, ओ साँवरिये

मन में प्रदीप्त प्रेम की आग—
मानव को नित मानव से मिला दे
नित मानव को मानव का हाथ दिला दे। ●

तनिक प्रीत—तनिक शीत

प्रीतम-प्रीतमा के बीच
कभी न चले ऊंच-नीच
न जात
पद दलित अभिजात—
सात्विक प्रीत न कभी हार न जीत

चोट पहुँचाने पर
आंसू दुखिया पर न बहा
प्रेम को झुलसाकर
शिकारी शिकार आप रहा

सदा लागू रहे प्रीति में
जादू-टोना
उसके स्पर्श मात्र से
कंकर भी बने सोना

मन करे कि हमारे प्रेम की जीत
प्राणों में बनी रहे दिव्य गीत
सदा हरित
—न कि प्रेम की हार
जो मरते-जीते तक
प्रहार अविस्मृत

कभी तो यह भी हो जाता
—रात की हुई स्मृतियों में
प्रीत का दिवास्वप्न खो जाता

तोड़ने पर भी
न टूटेगी कभी वह प्रीत
जड़ें जिसकी हम दोनों
एक ही धार से सिंचत करें

प्राणों की अनमोल निधियाँ खो जाता
जो प्रेम विहीन गढ़ियों में सो जाता
-जिसे सात्विक प्रेम अज्ञात
धनाढय होकर भी सारी श्री उसकी भूमिसात्

प्रेम को मान
अनमोल देन भाग्य का दान
—प्रेम जो तुच्छ-सा भी माँगता प्रतिदान
प्रेम नहीं—मात्र बलिदान

जो प्राणी प्रेम को प्रेम से चुकाता
उसी का प्रेम-वारिधि कभी न रुक जाता
जीवन का कठोरतम दिन भी
उसके लिये कुसुम्भी

मेरा तुझ पर क्या वश
तू अनेकों दिशाओं का स्वामी
मैं मात्र किसी अंचल को अबला अवश
निराभिमानी—

रे साँवलिए, मुझको बुलाकर
तूने दूसरी के चरण थाम लिये
फिर तो उलाहना कैसे न करूँ

मेरे तो इस घर-आँगन में
न किवाड़ न ताले
तूने ही मेरा सब कुछ
मन के सारे दिशा-द्वार संभाले

हम दोनों की एक-संग प्रीति—
कभी मत बिसरा
मेरी बाँह पकड़ने की ललित रीति
न चोरी-छिपे मिलने की पुरानी स्मृति •

चित्त में चिंतामणि—प्रेम की प्रतिध्वनि

कभी मत पछता
प्रेम की वलि चढ़ा बेकार
प्रेम मात्र दान—न प्रतिदान
वास्तविक प्रेम, सच्ची प्रीति
प्राणों की पहली और अंतिम स्मृति—
हमारा जीवन मिलन-बिछुड़ण
मानवी प्राण मिलकर प्रस्थान

तनु को महान से मिला
प्रेम को प्राणी-प्राणी में जिला

जिसके चित्त में चिंतामणि
उसे कैसे न मिले प्रेम-पुकार की प्रतिध्वनि ?

प्रम का सभी लोग बन्धन मानें
पर तू न मान
सात्विक प्रेम, उन्मुक्त प्राण, अंतर की उड़ान

सात्विक प्रेम
सुकर्मों का अमृतपात्र
शेष तू येन-केन प्रकारेण
जीवित रहने के उपाय मात्र

कहीं जाना है तो सीधी राह लिये
कुछ कर दिखाना है तो अपना न्योछावर किये
चरम गंतव्य पर तीव्र-से-तीव्र पहुँचना है
तो कल नहीं आजही प्राणों का मोह त्याग दिए

आदि में ही निराश मत रह—
प्रति अथ प्रायः दुर्गम पथ
प्रति इति प्रायः रम्य स्थिति

किसी के बांधे प्रेम नहीं बांधता—
नित हरित अक्षयवट-सा
उदार चित्त में खिलता
प्रेम पीड़ा भोगकर

बन मत पीड़ित
प्रेम लीला चखकर
नख से शिख तक बन प्रेम सिक्त

किसी के साधे न सध जाए
वह अघोष मौन ध्वनि
जो हृदय में छिपाये रखता
सत्विक प्रेमपूर्ण माणि

किसी के छोड़े न छूटे कभी
प्रीत की बात
उसकी उत्कंठा अनुक्षण
अकुलाती रहेगी दिवारात
एक बार मानवी हृदय में जब पड़ी
और गहनतम गड़ी
रम्य-से-रम्य अमृता परी बनी

पहले सात्विक प्रेम की गठरी बांध
उसके बल फिर जो जी चाहे लांघ
क्या दुर्गम पर्वत या अलंघ्य घाटी
क्या ऊबड़-खाबड़ पृथ्वी की छाती

प्रेम के कारण जो भूल बैठे अपना पथ
उसका प्रेम था पूरे का पूरा अंधा
रटे-रटाए संस्कारों से बांधा
या उसका प्रेम घिसा-पिटा रथ

वास्तविक प्रेम लुका-छिपा रहने पर भी
मन-ही-मन दीप्तिमान—
दूर रथ मार्ग भी
दिग्दिग पर तक उससे कांतिवान •

तू धूल में पड़ी क्यों, प्रिये ?

अपनी छवि से
हमारे जीवन पथ कृतकृत्य किए
तू धूल में पड़ी क्यों प्रिये ?

मेरा सब कुछ तू ही आप
तू ही प्रातः सांझ को
सारे मेरे कार्य कलाप

जब से तूने कृपा दीठ की
मेरे दर्शन किए सपने में
सड़क पर एक बार भी नहीं भीख की
—रमता हूँ सब कहीं निडर
मन में आनन्द लिए
आँखों में तेरी मुसकान मीठी

प्रिये, तेरे तन मन में
इहलोक की समस्त रिधि-सिधि घनीभूत
मैं ही क्या
इहलीला का प्राणी जगत तक तुझसे अभिभूत

री प्राण प्रिये, तेरी गोद में थोड़ी-सी ठौर
मेरी प्रीत के लिए कैसे नहीं
जब कि ढेरों-ढेर विपालकाय बौर
तूने उसमें लाड़-दुलार से समेट लिए

किसी के घर माँगूँ क्यों भिक्षादान
जब तेरी जिह्वा पर मीठी बानी
कंठ में मंगल-गान

अब मैं कहाँ आवारा
जबकि तेरे कदम्बों की डालों में
मेरे सारे जनम पकड़े-जकड़े तुझ द्वारा ●

कुछ सलोना-शेष अलोना

मिली किसी के प्राणों में भीति
मिला मनस्ताप
दूसरे को मरते-जीते तक प्रीति
यों हो श्राप

भाग्य कभी प्रतिदेर तक कर देता
कभी सागर-सा सभी नावें हर लेता

प्राणों में वह न हारा
जिसका 'सादा जीवन-ऊंचा चिंतन' था नारा

आदर्श के लिए जो अपना सर्वस्व दे चुका
उसका कलेजा कभी न रूका

जोहते-टोहते रह
अपने सुखी ग्रह की राह
एक दिन अवश्यमेव
पूरी होगी तेरी उत्कट चाह

मात्र स्फटिक सा निर्मल मन
जिसमें प्रेम—
स्वतः वृंदावन
दूसरों के लिए कुशल-क्षेम

जैसे किसी के बुझाए न बुझेगी
मन की जलती आग
वैसे किसी के रोके न रुकेगा
सच्चा अनुराग
और झुकाए नहीं झुकेगा
सामुद्री तरंगों का झाग •

कुछ एक रम्य-शेष सब वन्य

प्रेम-पीड़ा प्राणों में कस्तूरी
जिसके बिना समूची लोक-लीला अधूरी

प्रेम दान है, मत भीख
भिखमंगे से प्रेम करना मत सीख!

प्राणों के वे क्षण मत समझ खोए
जिनको बिताया प्रेम की स्मृतियों में
मीठी नींद सोए

जो सात्विक प्रेम करे
अपने पूरे प्राण मात्र सत्कर्मों से भरे
केवल सात्विक प्रीति
घोरतम तमस को झेलते हुए
रहती नित जीती

यह लौकिक लीला-हम सभी मानवों की
बनी रहे नित्यप्रति प्रेम की पीड़ा

प्रीत का प्राणों में आना दिनानुदिन धन्य
न आती वह, होतीं रातें रीत
दिन पर दिन अधिक वन्य
—होता पूरा जीवन संतापित

तुझ से पत्रोत्तर न मिला मेरे पते
तो न मिला—
न कहीं पहाड़ फटे
न समाप्त हुई मेरी लोक-लीला

दुष्कर है जीते-मरते तक सहना विरहाकुल प्रीत
दुर्लभ है पाना प्राणों में अनन्य मीत
दुःसाध्य है वापस पुनः लाना
यौवनकाल की बीती घड़ियाँ गीतातीत •

कुछ ही वाक–शेष अवाक

किसी के मधुर बोल अवाक
जीवन भर कभी बिसारे न विसरते
जबकि वे जो वाक
मरते-जीते तक अखरते

कभी तो कुछ कहते न सुनते बनता
दीर्घकाल बाद
पुनः ऋतुराज जब नस-नस में रमता

रही मन में मन की बात
तो रही
इसी कारण करे कौन आत्मघात ?

मात्र मन जिसमें प्रीत
मरते-मरते तक कोमल गीत
अपना ढूंढोरा मत पीट
दूसरों को भी गाने दे अपने गीत

वह देश वह मातृभू
पूर्ण-पूर्ण अपुत्रवती
जिसका न अपना स्वयम्भू
न वाक सरस्वती

कर्मच्युत मनन
मरघट के मौन-सा मरण

लो, ऊपर मंडलाता चक्रवाक—
पीड़ित मन की भाँति संतापित
बिना स्वाति पूर्ण अवाक •

भले ही किसी ने न गाया

भले ही किसी ने गीत भी न गाया
मैंने अनगिन गीतों का नाद पाया

भले ही दोनों हम पीते
एक ही गाय का दूध-दही
जो भी हम करते, जैसा सोचते
वह न वही

भले ही किसी ने छिपा दी
मेरे लोटे में जलबिंदु छोटी
तो भी पाया मैंने उसमें
सिन्धु सीप का अनमोल मोती

भले ही तेरी ताल-तलैया पर
थोड़े ही एक सेवार
मेरे घोड़े की पीठ पर सदा
एक नहीं, अनेक सवार

भले ही किसी ने
मेरे सपने में समा दी एक रात कटाक्ष वृष्टि
पाई मैंने उसमें दूसरी रात
भूस्वर्ग की रम्य सृष्टि
फिर रात तीसरी चौथी
स्वाति जल की बहुल वृष्टि

भले ही किसी ने याद किए
द्वेश-विद्वेशपूर्ण कड़ुए वर्ष
स्मरण किए मैंने
मात्र नलिनियों के कोमल मृदु स्पर्श

किसी ने रख दी मेरी देहली पर
कुम्हलाई लता
पाई मैंने वहाँ पूरे जगत को
सलोनी छटा

भले ही तेरी रातें सौ-सौ निद्राहीन
मेरी तो सौ सहस्र मनोरम घातें
भले ही तूने देखे सब कहीं केवल बियाबान
पाए मैंने बीहड़ों में भी सुष्ठुरस के अमृतबान

भले ही तू कहती बराबर
कल की कौन जाने
मैं पर जानता हूँ
कि तेरे नयनों के कुसुम
मेरे मरते तक रहेंगे लुभावने

भले ही किसी ने घिसे-पिटे बोलों द्वारा
घुसाए मेरी सुध-बुध में कांटों के बाल
तो भी पाया मैंने उसमें
तरुण प्रेम का अंकुरण काल

भले ही कहा किसी ने
तेरी तो कभी नहीं कोई दिवाली
पर पाए मैंने तेरी तलैया पर नील कमल
घर-आंगन में तुलसीदल
और मेरी फूलवाड़ी में कली, कली खिलाई
सच—तेरी तो दिन-दिन
—तुषार होते हुए भी—
नई-से-नई दिवाली

प्राण प्रिये, भले ही तू कुछ आज न लाई
तो भी भेंट अकथ मैंने तेरे लोचनों में पाई •

कहा किसी ने तू अब हो गई और की ओर
पाया मैंने तू मन में बनी रही
पुरानी प्रीति की वही डोर
वही जीवन जोत
लोक-लीला में
जो पुण्य कर्मों का स्रोत

प्राणों में देखीं किसी ने
खाइयाँ और राहें ऊबड़-खाबड़ ही
पाए मैंने पग-पग मात्र हरित पेड़
उनके तले मार्ग
गंतव्य तक कुसुम्भी

किसी ने माना
तू सारे प्राणियों को भूलोक परो
माँ वसुंधरा-सी
सबके लिए धूप-छांव-सी
सब सम्भव इन्द्रजाल से
मंगल कलश सी भरी
किसी ने मात्र माना
मैं ने आप ही जाना

एक दिन दान दिया किसी ने
मेरी वाणी को मौन
अब आगे को गाएगा
प्रीत के गीत कौन ? •

कहीं श्री अकथ—कहीं मात्र मनोरथ

पुराने साँचे कर पार
चाहे वह शशि तुल्य शोभा
चाहे मणिजटित द्वार—
महुए की आभा वर्षानुवर्ष नई
तभी तो सभी को जाँचे महिमामयी

कर अंतर्निविष्ट अपना काम ऐसी कलाकृति!
जो सरल मनुज को भी लगे अभिराम

सिधारने से पूर्व यहाँ—परलोक
रच तो डाल यहाँ—इहलोक
दो-चार रम्य श्लोक

यह क्या न्याय
तेरे उस पार अनन्त मत्स्य तट
मेरा इस पार
मात्र भिखमंगों का रीता घट

थकावट से चूर मैं द्वार-द्वार जाता
द्वार-द्वार तेरी स्तुति गाता
तू कहाँ रमे रहती
सुखी-सखी तू गंगा जी सी

यों स्वांतः सुखाय बहती!
तरंगों का झाग—घड़ी-घड़ी पुराना पड़ जाता
जबकि मानस की जलती आग
मृत्युंजय—जो काल—अकाल रह जाता

भाड़ में जाए ऐसी श्री अकथ
जिसके निमित्त ताप से पीड़ित मनोरथ
ऐसी शोभा सुनहरी अश्राव्य जिसके निमित्त
मधुर गीतों की सुरलहरी •

हम मिले अकस्मात—किसी संध्या सांवली
हुए साक्षी नदी घाट—गांव गांव की बांवरी
थी तरंग-सी तेरी ग्रीवा
धनुष सी पलकें
केशों में सुनहरी सुतली
लावण्य की कहीं न सीवा

ओ प्रेयसी, तू चित्त में अब इतनी समाई
कि जहां-जहां पूछूं तेरा नाम
सभी कहते एक सी प्रेतमयी

मुट्ठी खाई मैंने जल के साथ
चलता धूप में तपती रेत पर नंगे पैर
पर तेरी सुधि भुला न दी—
तुझे न पाकर कहीं भी
देह में भभूत रमा ली

स्वर्ण लता से कलेजे से
बोल तेरे चिपकते चोरी-चोरी
जैसे सुखी नींद के लिए
मां की नेहसिक्त लोरी

अवाक से जिस क्षण बना वाक
उसी क्षण अमृत से बनी अमृता
तभी से वाकावाक से जन्म लेती
प्रतिक्षण नई कविता •

तेरा हूँ ऋणी, पुष्करिणी, ओ पुष्करिणी

सुख के लिए और क्या चाहिए ?
दिशा-दिशा में समीर—
फिर एक ही डाल पर तेरा मेरा नीड़

क्या करूँ क्या न करूँ ?
मेरी सम्मति एक ही—
खेलने में डुबा ले अपना मन
ठुकराकर सारी गुड़ियों का प्रलोभन—
रथ पीछे से ठेल
आग से कभी मत खेल !

हम मिले अकस्मात—किसी संध्या सांवली
हुए साक्षी नदी घाट—गांव गांव की बांवरी
थी तरंग-सी तेरी ग्रीवा
धनुष सी पलकें
केशों में सुनहरी सुतली
लावण्य की कहीं न सीवा

ओ प्रेयसी, तू चित्त में अब इतनी समाई
कि जहां-जहां पूछूं तेरा नाम
सभी कहते एक ही प्रेतमयी

मुट्ठी खाई मैंने जल के साथ
चलता धूप में तपती रेत पर नंगे पैर
पर तेरी सुधि भुला न दी—
तुझे न पाकर कहीं भी
देह में भभूत रमा ली

स्वर्ण लता से कलेजे से
बोल तेरे चिपकते चोरी-चोरी
जैसे सुखी नींद के लिए
मां की नेहसिक्त लोरी

अवाक से जिस क्षण बना वाक
उसी क्षण अमृत से बनी अमृता
तभी से वाकावाक से जन्म लेती
प्रतिक्षण नई कविता •

अब अगला गीत गाए कौन?

वही गाए गान
धक-धक करते कलेजे में जिसके
सूर से कवि शिरोमणि मूर्तिमान
कंठ में जिसके विराजी
स्वयम् मीराजी •

मेरी निधि

मेरी लोक-लीला की निधि
स्वयम् भारत-स्वयम् हिन्दी
जिह्वा पर हिन्दी का राग
उसमें निरंतर कार्य करने की
जोशीली आग—
मेरे इहलोक की सिद्धि •

जितनी बार पिया

हिन्दी ज्ञान
मेरे लिए अमृत-पान
जितनी बार उसे पीता हूं
उतनी बार लगता है
पुनः जीता हूं •

अथक बन

मेरे सपूत
नई राहें खोजते-खोजते अथक बन
मात्र सदुपाय से होतीं प्रसूत
मनुष्य की सारी निधियां लुभावन •

एक आध लास्य-शेष तो हास्य

मात्र मतिहीन
गधे के आगे बजाए बीन •

जिसके सिर पर खाट
वह तो जरूर जाट •

आओ थोड़ा बहुत गा लें
ऊब चिंता टालें •

अपना सर्वस्व अर्पित खुले छोड़
आएगी कल भी
नई धूप से आशा भरी भोर •

तेरा मन अब करे तो काट
अति देर तक जोही तू ने मेरी बाट •

नाम जिसका अमिताभ
उसको और भी देने से क्या लाभ? •

राह जिसकी भटकी
मिले फिर उसको कहाँ से दूध-दही की मटकी? •

सदा पानी से उठकर बातें बोल
पानी में रहकर ही तनिक सा मुंह न खोल •

बहती जिसके मन में सुधारस की सरिता
नहीं चाहिए उसी को कविता
न भी तो कभी ललिता •

अपने तन को जो होम करे
और मन को मोम करे
उसी के लिए पूरे वर्ष के मौसम हरे हो हरे •

बना तो रहा जीवन भर बहुरंगी
पर भीख-भिक्षा किसी से नहीं माँगी •

मीठे बोल

मीठे बोलों में जो सहज उलझे
अपना जीवन हारा समझे—
उन में जो सहज फंसे
उसे कौन न विहंसे ?

मीठे बोल कभी पारसमणि नहीं बनते
मात्र थोथे गलियारों में सुगम रमते—
न कर कभी शांत मीठे बोलों की ध्वनि से
अपनी तृषा भूख स्वांस! •

नचिकेता

काश मानवी मन
जगलीला की सारी भंगिमाएं
उसके समस्त रूपांतरण
पहचान लेता—
काश होता वह
ज्ञात-अज्ञात, ज्ञेय-अज्ञेय की गूढ़ताओं का
नचिकेता ! •